पत्रावली

पृथ्वी में हो रहा है सिर पर सबके मृत्यु का नित्य नृत्य ।
क्या जानें ताल टूटे किस पर उसकी, कीजिए कीर्ति-कृत्य ॥

मैथिलीशरण गुप्त

श्रीहरिः

पत्रावली

(ऐतिहासिक आधार पर लिखित कुछ पद्यात्मक पत्र)

लेखक

मैथिलीशरण गुप्त

प्रकाशक

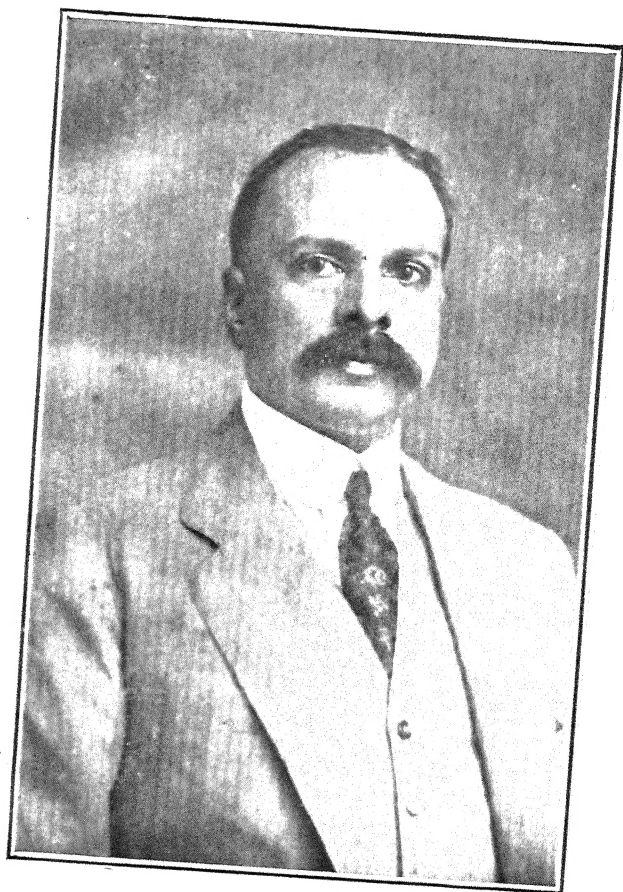
साहित्य-सदन,

चिरगाँव (झाँसी)

१९८५

तृतीयावृत्ति] [मूल्य ।-)

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा
साहित्य प्रेस, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) से
मुद्रित तथा प्रकाशित।



राय कृष्णजी का सदा चाहिए प्रताप हो,—
मेरे पत्र-पुष्प हुए कृष्णार्पण आप हो।

मैं, अतीत, अब मुक्त हुआ हूँ,
वर्तमान ! इति युक्त हुआ हूँ ।
किन्तु दूर तुझसे न रहूँगा;
पत्र भेज निज वृत्त कहूँगा ॥

श्रीगणेशायनमः

पत्रावली

लंका में प्रिय की वार्त्ता सुन के आञ्जनेय से ।
तुष्ट सीता हमें रक्खें प्रेय के साथ श्रेय से ॥

महाराज पृथ्वीराज का पत्र

(महाराना प्रतापसिंह के प्रति)

[महाराना प्रतापसिंह स्वाधीनता की रक्षा के लिए वन वन भटकते रहे पर उन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। एक बार कौटुम्बिक विपत्ति के कारण उनका हृदय विचलित हो गया था। इसी से उन्होंने अकबर के साथ सन्धि करने का निश्चय किया था। किन्तु बीकानेर के महाराज पृथ्वीराज का यह पत्र पाकर वे फिर अपने व्रत पर आरूढ़ होगये थे।]

[१]

स्वस्ति श्री स्वाभिमानी कुल-कमल तथा हिन्दुआसूर्य सिद्ध,
शूरों में सिंह सुश्री शुचि रुचि सुकृती श्री प्रताप प्रसिद्ध ।
लज्जाधारी हमारे कुशल युत रहें आप सद्धर्म-धाम;
श्री पृथ्वीराज का हो विदित विनय से प्रेम-पूर्ण-प्रणाम ॥

[२]

मैं कैसा हो रहा हूँ इस अवसर में घोर-आश्चर्य-लीन,
देखा है आज मैंने अचल चल हुआ, सिन्धु संस्था-विहीन !
देखा है, क्या कहूँ मैं, निपतित नभ से इन्द्र का आज छत्र,
देखा है और भी, हाँ, अकबर-कर में आपका सन्धि-पत्र !

[३]

आशा की दृष्टि से वे पितर-गण किसे स्वर्ग से देखते हैं ?
सच्ची वंश-प्रतिष्ठा क्षिति पर अपनी वे कहाँ लेखते हैं ?
मर्यादा पूर्वजों की अब तक हम में दृष्टि आती कहाँ है ?
होती है व्योम-वाणी वह गुण-गरिमा आप ही में यहाँ है ॥

[४]

खो के स्वाधीनता को अब हम सब हैं नाम के ही नरेश,
ऊँचा है आपसे ही इस समय अहो ! देश का शीर्ष-देश।
जाते हैं क्या झुकाने अब उस सिर को आप भी हो हताश ?
सारी राष्ट्रीयता का शिव शिव ! फिर तो हो चुका सर्वनाश !

[५]

हाँ, निस्सन्देह देगा अकबर हमसे आपको मान-दान,
खोते हैं आप कैसे उस पर अपना उच्च धर्माभिमान ?
छोड़ो स्वाधीनता को मृगपति ! वन में दुःख होता बड़ा है;
लोहे के पींजड़े में तुम मत रहना स्वर्ण का पींजड़ा है !

[६]

ये मेरे नेत्र हैं क्या कुछ विकृत कि हैं ठीक ये पत्र-वर्ण ?
देखूँ है क्या सुनाता विधि अब मुझको, व्यग्र हैं हाय ! कर्ण ।
रोगी हों नेत्र मेरे वह लिपि न रहे आपके लेख जैसी,
हो जाऊँ दैव ! चाहे बधिर पर सुनूँ बात कोई न वैसी !

[७]

बाधाएँ आपको हैं बहु विध वन में, मैं इसे मानता हूँ,
शाही सेना सदा ही अनुपद रहती, सो सभी जानता हूँ ।
तो भी स्वाधीनता ही विदित कर रही आपको कीर्त्तिशाली;
हो चाहे वित्त वाली पर उचित नहीं दीनता चित्त वाली ॥

[८]

आये थे, याद है क्या, जिस समय वहाँ 'मान' सम्मान पाके,
खाने को थे न बैठे मिस कर उनके साथ में आप आके ।
वे ही ऐसी दशा में हँस कर कहिए, आपसे क्या कहेंगे ?
अच्छी हैं ये व्यथाएँ, पर वह हँसना आप कैसे सहेंगे ?

[९]

है जो आपत्ति आगे वह अटल नहीं, शीघ्र ही नष्ट होगी,
कीर्त्ति-श्री आपकी यों प्रलय तक सदा और सुस्पष्ट होगी ।
घेरे क्या व्योम में है अविरत रहती सोम को मेघ-माला ?
होता है अन्त में क्या वह प्रकट नहीं और भी कान्तिवाला ?

[१०]

हे सच्ची धीरता का समय बस यही हे महाधैर्य्यशाली !
क्या विद्युद्वन्हि का भी कुछ कर सकती वृष्टिधारा-प्रणाली ?
हों भी तो आपदाएँ अधिक अशुभ हैं क्या पराधीनता से ?
वृक्षों जैसा झुकेगा अनिल-निकट क्या शैल भी दीनता से ?

[११]

ऊँघे हैं और हिन्दू, अकबर-तम की है महाराजधानी;
देखी है आपमें ही सहज सजगता हे स्वधर्माभिमानी !
सोता है देश सारा यवन नृपति का ओढ़ के एक वस्त्र,
ऐसे में दे रहे हैं जग कर पहरा आपही सिद्धशस्त्र ॥

[१२]

डूबे हैं वीर सारे अकबर बल का सिन्धु ऐसा गभीर,
रक्खे हैं नीर नीचे कमल-सम वहाँ आपही एक धीर।
फूलों-सा चूस डाला अकबर-अलि ने देश है ठौर ठौर
चम्पा-सी लाज रक्खी अविकृत अपनी धन्य मेवाड़-मौर !

[१३]

सारे राजा झुके हैं जब अकबर के तेज-आगे सभीत
ऊँची ग्रीवा किये हैं सतत तब वहाँ आपही हे विनीत !
आर्य्यों का मान रक्खा, दुख सह कर भी है प्रतिज्ञा न टाली,
पाया है आपने ही विदित भुवन में नाम आर्यांशुमाली ॥

[१४]

गाते हैं आपका ही सुयश कवि-कृती छोड़ के और गाना;
वीरों की वीरता को सु-वर मिल गया चेतकारूढ़ राना।
माँ! है जैसा प्रताप प्रिय-सुत जन तू तो तुझे धन्य मानें;
सोता भी चौंकता है अकबर जिससे साँप हो ज्यों सिराने॥

[१५]

"राना ऐसा लिखेंगे, यह अघटित है, की किसीने हँसी है;
मानी हैं एक ही वे, बस नस नस में धीरता ही धँसी है।"
यों ही मैंने सभा में कुछ अकबर की वृत्ति है आज फेरी;
रक्खो चाहे न रक्खो अब सब विध है आपको लाज मेरी॥

[१६]

हो लक्ष्यभ्रष्ट चाहे कुछ, पर अब भी तीर है हाथ ही में
होगा हे वीर! पीछे विफल सँभलना, सोचिए आप जी में।
आत्मा से पूछ लीजे कि इस विषय में आपका धर्म क्या है;
होने से मर्म-पीड़ा समझ न पड़ता कर्म-दुष्कर्म क्या है॥

[१७]

क्या पश्चात्ताप पीछे न इस विषय में आप ही आप होगा?
मेरी तो धारणा है कि इस समय भी आपको ताप होगा।
क्या मेरी धारणा को कह निज मुख से आप सच्चा करेंगे?
या पक्के स्वर्ण को भी सचमुच अब से ताप कच्चा करेंगे?

[१८]

जो हो, ऐसा न हो जो हँस कर मन में 'मान' आनन्द पावें;
जीना है क्या सदा को फिर अपयश की ओर क्यों आप जावें?
पृथ्वी में हो रहा है सिर पर सबके मृत्यु का नित्य नृत्य;
क्या जानें, ताल टूटे किस पर उसकी, कीजिए कीर्ति-कृत्य॥

[१९]

हे राजन्, आपको क्या यह विदित नहीं, आप हैं कौन व्यक्ति?
होने दीजे न हा! हा! शुचितर अपने चित्त में यों विरक्ति।
आर्यों को प्राप्त होगी, स्मरण कर सदा आपका, आत्मशक्ति;
रक्खेंगे आप में वे सतत हृदय से देव की भाँति भक्ति।

[२०]

शूरों के आप स्वामी यदि अकबर की वश्यता मान लेंगे
तो दाता दान देना तज कर उलटा आपही दान लेंगे।
सोवेंगे आप भी क्या इस अशुभमयी घोर-काली-निशा में?
होगा क्या अंशुमाली समुदित अब से अस्तवाली दिशा में?

[२१]

दो बातें पूछता हूँ, अब अधिक नहीं, हे प्रतापी प्रताप!
आज्ञा हो, क्या कहेंगे अब अकबर को तुर्क या शाह आप?
आज्ञा दीजे मुझे जो उचित समझिए, प्रार्थना है प्रकाश—
मूँछें ऊँची करूँ या सिर पर पटकूँ हाथ हो के हताश?

महाराना प्रतापसिंह का पत्र

(पृथ्वीराज के प्रति)

[पृथ्वीराज का पूर्वोक्त पत्र पाने के पूर्व ही महाराना सन्धिपत्र के लिए पश्चात्ताप कर रहे थे। उस पत्र को पाकर उन्हें बहुत संतोष हुआ। यह पत्र उसी पत्र के उत्तर में लिखा गया है।]

[१]

निदाघ-ज्वाला से विचलित हुआ चातक अभी,
भुलाने जाता था निज विमल-वंश-व्रत सभी।
अहा ! ऐसे ही में जलद सुख का सत्र पहुँचा,
अहो पृथ्वीराज प्रियवर ! कृपापत्र पहुँचा॥

[२]

दिया पत्र-द्वारा नव-बल मुझे आज तुमने;
बचा ली बाप्पा के विमल-कुल की लाज तुमने।
हुआ है आत्मा का यह प्रथम ही बोध मुझको;
दिखाई देता है न इस ऋण का शोध मुझको॥

[३]

सु-साक्षी हैं मेरे विदित कुलदेव ग्रहपति;
बनाये थी मानों मुकुट उनको मध्य जगती।
पड़ा था छाया में, गहन वन में, मैं तरु-तले;
विचारों के सोते उस विजनता में बह चले॥

[४]

उदासी छाई थी, वह समय भी था विकट ही;
क्षुधा-क्षीणा बेटी रुदन करती थी निकट ही।
वहाँ क्या था? राज्ञी विवश मन में धैर्य धरके;
बनाती थी रोटी विरस तृण का चूर्ण करके॥

[५]

न मिथ्या बोलूँगा, उस समय भी मैं विमन था,
नहीं था मैं मानों शव-सम पड़ा शून्य तन था।
मुझे सारी बातें स्मरण अब भी स्वप्न-सम हैं;
बताऊँ मैं कैसे विधि-नियम जैसे विषम हैं!

[६]

भविष्यच्चिन्ता ही उस समय थी घोर मुझको,
दिखाई देता था घनतम सभी ओर मुझको।
हरे! क्या होना है, समझ पड़ता है कुछ नहीं,
न होगी क्या मेरी सफल यह आशा अब कहीं॥

[७]

मुझे भी औरों के सदृश वह दासत्व सह के,
पड़ेगा जीना क्या पशु-सम पराधीन रह के।
झुकाना होगा क्या सिर अरि-जनों को अब मुझे,
न होगा आत्मा का हनन करना क्या तब मुझे॥

[८]

न होगी आर्यों की अहह! अब क्या आर्यधरणी?
हमारी होगी क्या अतल जल में मग्न तरणी?
अनार्यों ही का क्या अब अटल है शासन हरे!
हुआ क्या आर्यों का अब निपट निष्कासन हरे!

[९]

हमारे भाई ही बन कर विपक्षी जब यहाँ,
मिले हैं तुर्कों से तब फिर भला मङ्गल कहाँ?
न होने पाती जो स्फुटित हममें फूट इतनी,
मचाते तो कैसे अरिगण यहाँ लूट इतनी?

[१०]

गड़े थे पृथ्वी में विपुल विजय-स्तम्भ जिनके,
जिन्होंने थे सौ सौ विधियुत किये यज्ञ गिनके।
बने हैं पापी भी सुकृति जिनकी कीर्ति सुनके,
हुए हैं कैसे हा! पतित हम सन्तान उनके॥

[११]

विचारों में था यों जिस समय मैं व्याकुल बड़ा,
कि भारी चीत्कार श्रवण कर चौंका, जग पड़ा।
कहूँ हा ! देखा क्या प्रकट अपनी मृत्यु-घटना,
अचम्भा है मेरे हत हृदय का ही न फटना ॥

[१२]

बनी थी जो रोटी विरस तृण का चूर्ण करके,
बचाती बेटी को उस समय जो पेट भरके।
उसे देखा मैंने अपहृत बिडाली कृत वहाँ;
न देखा बेटी को अहह ! फिर था साहस कहाँ ॥

[१३]

विधातः ! बाप्पा के अतुल-कुल की हा ! यह गति;
किसी ने देखी है अवनि पर ऐसी अवनति !
जिन्हें प्रासादों में सुख सहित था योग्य रहना,
उन्हें खाने का भी वन वन पड़े दुःख सहना !

[१४]

स्वयं मैं ही हूँ क्या इस विपद का कारण नहीं,
व्रतों के पीछे भी जिस विपद में पारण नहीं।
नहीं तो रोते क्यों यह शिशु कि है राज्य जिनका,
मुझे चाहे जो हो पर अहह ! क्या दोष इनका ॥

[१५]

क्षुधा से बेटी का वह तड़पना मैं निरख के;
न हे पृथ्वीराज ! स्थिर रह सका धैर्य रख के।
मुझे आत्मा की भी सुध-बुध न हा ! रञ्चक रही,
क्षमा कीजे मेरी यह अबलता—केवल यही ॥

[१६]

न सोचा मैंने हा ! कि यह सब है दैव-घटना;
स्व-कर्त्तव्यों से है समुचित नहीं नेक हटना।
विधाता जो देवे ग्रहण करना ही उचित है,
उसी की इच्छा में सतत शुभ है और हित है ॥

[१७]

कहीं सोचा होता धृति सहित मैं ने यह तभी,
न होता तो मेरा यह पतन आकस्मिक कभी।
सहारा देते जो तुम न मुझको सम्प्रति वहाँ,
न जाने होता तो उस पतन का अन्त न कहाँ ॥

[१८]

तुम्हारी बातें हैं ध्वनित इस अन्तःकरण में,
पुनः आया मानो अखिलपति की मैं शरण में।
यही आशीर्वाणी अब तुम मुझे दो हृदय से,
न छोड़ूँ जीते जी यह व्रत किसी विघ्न-भय से ॥

[१९]

यही आकांक्षा है, जब तक रहूँ देह-रथ में,
किसी भी बाधा से विचलित न होऊँ स्वपथ में।
जिसे आत्मा चाहे सतत उसका साधन करूँ,
उसी की चिन्ता में रह कर सदा चिन्तित मरूँ॥

[२०]

तुम्हारी वाणी है अमृत, कवि जो हो तुम अहो!
जिया हूँ मैं मानों मर कर पुनः पूर्व-सम हो।
सहूँगा दुःखों को सतत फिर स्वातन्त्र्य-सुख से,
करूँगा जीते जी प्रकट न कभी दैन्य मुख से॥

[२१]

तुम्हारा 'पत्ता' है जब तक, सहे क्यों न विपदा,
करो मूँछें ऊँची तब तक सखे! 'पीथल' सदा।
सुनोगे तुर्कों को न तनु रहते शाह हमसे,
वहाँ-प्राची में ही-रवि उदित होगा नियम से॥

छत्रपति शिवाजी का पत्र

(औरंगज़ेब के प्रति)

['जज़िया' नाम का कर लगाने के विरुद्ध महाराज शिवाजी ने ह पत्र औरंगज़ेब को लिखा था। कोई कोई इसे महाराना राजसिंह लिखा बतलाते हैं परन्तु ऐतिहासिक प्रमाण शिवाजी के ही पक्ष हैं।]

[१]

विश्वात्मा ही निखिल-नुति के योग्य है एक मात्र;
पृथ्वी में हैं प्रवर-पद से आप भी स्तोत्र-पात्र।
रक्खे चाहे सतत मुझको आपसे दूर दैव,
क्षेमाकांक्षी तदपि मन से आपका हूँ सदैव॥

[२]

जो सेवा मैं जब कर सकूँ, दीजियेगा निदेश,
मेरी इच्छा सतत यह है हों सुखी सर्व देश।
जैसे मैं हूँ श्रम कर रहा हिन्द के मङ्गलार्थ
औरों के भी हित अटल हूँ, जानियेगा यथार्थ॥

[३]

भद्राकांक्षी यह कुल रहा आपका आदि ही से,
उत्साही हूँ कुछ कथन को आज मैं भी इसी से।
ऐसा मौक़ा यदपि मुझको ताप ही के लिये है
होगा जैसा सु-फल इसका आप ही के लिए है॥

[४]

मेरे पीछे नियत करके दीर्घ सेना सरोष,
ख़ाली हैं जो अब तक किये आपने द्रव्य-कोष।
तत्पूर्त्यर्थ प्रचुर-कर, जो हैं प्रजा-प्राणहारी,
ऐसी हूँ मैं ख़बर सुनता, हैं किये हाल जारी॥

[५]

पूछूँ क्या मैं ग्रहण करते आपने यों कुरीति,
सोची है क्या तनिक अपने पूर्वजों की सुनीति?
थे क्या ऐसा कर न सकते वे महाशक्तिशाली,
किंवा थी क्या अविदित उन्हें राजसत्ता-प्रणाली?

[६]

श्रीमान् सम्राट् अकबर जिन्हें है मिली कीर्ति-कान्ति
रक्खे थे वे किस तरह से राज्य में पूर्ण शान्ति।
हिन्दू है या यवन, उनको था न यों भेद कोई;
वे थे ऐसे प्रभु सब प्रजा नित्य निश्चिन्त सोई॥

[७]

उत्साही थे सतत जिनके कार्य में आर्य-वीर,
थे ऐसे ही सुहृदय सुधी श्रीजहाँगीर धीर।
है वैसे ही विदित सबको नीति शाहेजहाँ की;
बातें हैं ये स्मरण रखिए, आप ही के यहाँ की ॥

[८]

था औदार्य प्रकट कितना आपके पूर्वजों में;
हैं अद्यापि प्रथित उनके नाम धर्मध्वजों में।
जाते थे वे नर-वर जहाँ थे वहीं सिद्धि पाते;
क्या हिन्दू क्या यवन उनके हैं सभी गीत गाते ॥

[९]

सर्व-प्रेमी बनकर न वे पा सके कौन सिद्धि ?
हिन्दू-द्वेषी बनकर हुई आपकी कौन वृद्धि ?
कोई देखे कि अब तब से वृद्धि क्या, ह्रास ही है;
हाँ जो कोई अब बढ़ रहा तो प्रजा-त्रास ही है !

[१०]

होता जाता दिन दिन न क्या आपका तेज धीमा ?
धीरे धीरे कट-छँट रही आपकी राज्य-सीमा।
जो ऐसा ही हलचल रही और आगे विशेष,
तो जावेंगे निकल कर ये दूसरे भी प्रदेश ॥

[११]

सोचें श्रीमन् इस समय है राज्य की क्या अवस्था;
देखें कैसी गड़बड़ हुई न्याय-संस्था-व्यवस्था ।
उत्पातों में पड़कर प्रजा हो रही दीन-हीन,
राज्यक्रान्ति प्रचलित हुई, होगई शान्ति लीन !

[१२]

हिन्दू जो हैं हतविधि, हुए मृत्युकालावसन्न,
होते जाते यवन जन भी चित्त में अप्रसन्न ।
व्यापारी हैं विवश लुटते, रो रही है रियाया;
कोई भी है कुछ न सुनता घोर अन्धेर छाया ॥

[१३]

दैन्यावस्था अति बढ़ रही, हो रहा देश नष्ट;
सेना को है विरत करता वेतनाभाव-कष्ट ।
यों खाली हैं अब जब हुए आपके ही ख़ज़ाने,
होगी कैसी पर-जन-दशा, सो भला कौन जाने !

[१४]

खाने को है कुछ न जिनके, रात को लोग ऐसे
मारे मारे सब भटकते वायु में मेघ जैसे ।
ऐसे दीनों पर कर कड़े ठीक हैं जो लगाना
तो पृथ्वी में अब कठिन है न्याय का नाम पाना ॥

[१५]

हो के एक स्वर कह रहा देश का देश ऐसे—
आर्य-द्वेषी अतिशय हुए आप, हों शत्रु जैसे।
भूले सारी स्वकुल गरिमा, साधुओं को सताते;
लेने जाके वह कर कड़ा हैं महत्ता बताते॥

[१६]

विश्वासी हैं उस पर कि जो ज्ञान है ईश्वरीय,
तो मानेंगे परमपति को आप भी अद्वितीय।
हिन्दू हों या यवन, सब हैं तद्दयादृष्टिपात्र।
सर्वव्यापी जनक सबका है वही एक मात्र॥

[१७]

विश्वात्मा के निकट सब हैं एक से, भेद क्या है?
स्वामी है सो विदित सबका, क्या किसी एकका है?
नामों से है कुछ न उसमें भिन्नता-भेद-भाव;
न्यारी न्यारी प्रकृति-रचना है उसी का प्रभाव॥

[१८]

गाते मुल्ला गुण मसजिदों में उसी के, तुम्हारे,
पूजा जाता प्रभुवर वही मन्दिरों में हमारे।
यों दोनों ही विविध विधि से हैं उसीको रिझाते;
अज्ञानी हैं नर बस वही जो उसे भूल जाते॥

[१९]

जो हो, आगे बस अब यही आपको है जताना—
स्रष्टा को है कुपित करना दूसरों को सताना।
तोड़ें पौधे यदि हम किसी बाग़ के भिन्न भिन्न,
तो क्या माली हम पर न हो क्रोध के साथ खिन्न ?

[२०]

है ऐसा ही कथन मुझको अन्त में वार वार,
है आर्यों के हित यह कर क्रूर पापानुसार।
हो जावेगा गलित इससे शेष भी शान्ति-लेश;
हैं अन्यायी अधम नृप के योग्य ऐसे निदेश॥

[२१]

हाँ, जो ऐसे कलुष-कर से आप खींचें न हाथ,
तो ले लेवें प्रथम उनसे, हैं न औरंगनाथ।
माँगे पीछे मुझ प्रणयि से स्वस्थ हो एक बार;
शूरों को है समुचित नहीं मक्खियों का शिकार॥

—

औरंगज़ेब का पत्र

(पुत्र के नाम)

[अन्त समय आने पर औरंगज़ेब की आँखें खुली थीं। उस समय उसे अपनी करतूतों पर बड़ा खेद और पश्चात्ताप हुआ। इसी संबन्ध में उसने अपने पुत्रों के नाम कई पत्र लिखे थे। यह पत्र उन्हीं में से एक है।]

[१]

प्रिय सुत, अब मेरा आगया काल-सा है;
इस समय तुम्हारी भेंट की लालसा है।
तनु शिथिल हुआ है, क्षीणता छा गई है;
अति जटिल जरा की जीर्णता आ गई है॥

[२]

जिस तरह अकेला था न आया वहाँ से,
इस समय अकेला जा रहा हूँ यहाँ से।
अवनि पर रहा मैं अज्ञ-यात्री सरीखा;
शुभ-पथ मुझ स्वार्थी अन्ध को था न दीखा॥

[३]

अहह ! वह भविष्यत् है पराधीन मेरा;
बस यह अब आगे दीखता है अँधेरा ।
विधि-विहित न मैंने राज्य का भोग जाना,
अब कठिन मुझे है पूर्व का योग पाना ॥

[४]

अवनि पर किसी की की न मैंने भलाई,
अविरत मनमानी मूढ़-सत्ता चलाई ।
अहित-सहित जाना पाप को भी न मैंने,
पल भर पहचाना आपको भी न मैंने ॥

[५]

सु-पथ पर चलाती अन्तरात्मा वही थी,
पर मति-गति मेरी दूसरी ही रही थी ।
मद-सहित किया था लोभ ने दृष्टि-रोध;
कुछ न कर सका मैं आत्म-विज्ञान-बोध ॥

[६]

वह निज-कृति ज्यों ही है मुझे याद आती,
धक धक जलती है धैर्य को छोड़ छाती ।
न समझ पड़ता है कौन से ठौर क्या है,
बस अब पछताना शेष है, और क्या है ॥

[७]

यदपि अमर कोई है नहीं विश्व-बीच,
तदपि मरण से हूँ भीत मैं निन्द्य-नीच।
सिर पर यम का है दीखता दीर्घ-दण्ड,
अहह ! नरक-पीड़ा पा रहा हूँ प्रचण्ड ॥

[८]

प्रभुवर परमात्मा है दया-दृष्टिधारी,
पर विदित वही है साथ ही न्यायकारी।
प्रकट जब क्षमाशा है किसी भाँति होती
झट पट उसको है पाप-चिन्ता डुबोती ॥

[९]

जिस तनु-हित मैंने भोग कोई न छोड़ा,
बस मुँह उसने भी अन्त में आज मोड़ा।
यह प्रतिफल मैंने ठीक ही आज पाया,
सब कुछ करवाती धन्य तू मोह-माया !

[१०]

धन-बल कुछ भी मैं था नहीं साथ लाया,
सब विभव यहीं था आप मैंने कमाया।
पर न सुकृत से था हाय ! मेरा कमाना,
अब कलुष बिना है और क्या साथ जाना ॥

[११]

किस विधि अब मेरा दैव ! उद्धार होगा ?
वह प्रतिफल कैसे जायगा हाय ! भोगा ?
बहुत बिवश हूँ मैं, क्या करूँ, आ पड़ी है;
चपल-तरणि मेरी चक्र में जा पड़ी है ॥

[१२]

शुभ-अशुभ यहाँ जो कार्य मैंने किये हैं,
यह सच कहता हूँ वे तुम्हारे लिए हैं।
मुझ पर मत लाना दोष कोई कदापि;
बस तव-हित हूँ मैं पुण्यकारी कि पापी ॥

[१३]

सुध-बुध सब मेरी जी चुराने लगी है;
कमर झुक गई है दृष्टि जाने लगी है।
बल-सहित सभी ने ले बिदा पीठ फेरी,
अब तुम स्वजनों से थी बिदा शेष मेरी ॥

[१४]

रह रह उठती है चूक की आज हूक,
यह कठिन कलेजा हो रहा टूक टूक।
समय गत हुआ है शेष है क्या उपाय;
शर निकल चुका है हाथ से हाय ! हाय !

[१५]

अघ-घट अपने मैं फोड़ के जा रहा हूँ,
नय-नियम यहाँ के तोड़ के जा रहा हूँ।
इस तनु तक को भी छोड़ के जा रहा हूँ!
बस अपयश को ही जोड़ के जा रहा हूँ॥

[१६]

प्रथम कुछ न आया ध्यान में हाय ! मेरे,
बस अब फिरना हैं मौत के साथ फेरे।
इस समय कहाँ हूँ कौन हूँ मैं अरे रे !
सब तरफ मुझे हैं शोक-सन्ताप घेरे॥

[१७]

तनय ! तुम किसी को व्यर्थ पीड़ा न देना;
फल कुछ करने के पूर्व ही सोच लेना।
पथ-विगलित हो के पा रहा ताप ही मैं,
कु-फल चख रहा हूँ पाप का आप ही मैं॥

[१८]

फिर न मिल सकेगी व्यर्थ वेला न खोना,
सतत मधुरभाषी नम्रतायुक्त होना।
सरल सरसता है वाक्य-विन्यास ही में,
गरल बरसता है वाक्य-विन्यास ही में॥

[१९]

प्रथम तुम सदा ही युक्ति से काम लेना,
मत पद पद में ही शक्ति का नाम लेना।
भर सक अपने में दोष आने न पावे,
यह मन विषयों की ओर जाने न पावे॥

[२०]

जब कि तुम किसी को व्यर्थ ही दुःख दोगे,
ध्रुवतर तब मेरी हानि के हेतु होगे।
इस समय तुम्हीं से अन्तिमाशा लगी है,
अब अधिक कहूँ क्या, जानता एक जी है॥

[२१]

पढ़ कर यह मेरा पत्र हे पुत्र! प्यारे,
सतत सजगता से कीजियो काम सारे।
मत तुम यह मेरा भूल जाना कलाम,
बस अब चलता हूँ, आखिरी है, सलाम!

———

महारानी सीसोदनी का पत्र

(महाराज जसवन्तसिंह के नाम)

[राज्य-प्राप्ति के लिए औरङ्गजेब और दारा का जो युद्ध हुआ था उसमें जोधपुर के महाराज ने दारा का साथ दिया था। पर अनेक कारणों से औरङ्गजेब की जीत हुई। महाराज जसवन्तसिंह युद्ध से विरत होकर जोधपुर गये। परन्तु उनकी महारानी ने उनके हार कर लौटने पर बड़ा क्रोध किया। सुनते हैं, उसने किले का फाटक भी बन्द करा दिया था। इसी सम्बन्ध में यह पत्र है।]

[१]

हे ना—नहीं, नाथ नहीं कहूँगी,
अनाथिनी होकर ही रहूँगी।
होते कहीं जो तुम नाथ मेरे,
तो भागते क्या फिर पीठ फेरे?

[२]

यथार्थ ही क्या मुँह को छिपाये,
संग्राम से हो तुम भाग आये?
धिक्कार है हा! अब क्या करूँ मैं,
रक्खी कहाँ मौत कि जो मरूँ मैं।

[३]

हा ! पीठ वैरी-दल को दिखा के,
त्यों हार माथे पर यों लिखा के।
आये दिखाने मुँह हो यहाँ क्या ?
भला बनेगा तुमसे कहाँ क्या ?

[४]

परन्तु मैं होकर वीर-बाला,
जो लोक में है करती उजाला।
देखूँ तुम्हारा मुँह आज कैसे ?
सहूँ कहो तो यह लाज कैसे ?

[५]

आये यहाँ क्या छिपने घरों में ?
या रानियों के घन-घाँघरों में ?
परन्तु भागे तुम भीरु ज्योंही,
हुए कहो क्या हत वे न त्योंही ?

[६]

जो मृत्यु की थी इस भाँति भीति,
जो मेटनी थी निज रीति-नीति।
तो जन्म क्यों सत्कुल में लिया था ?
क्यों व्याह राना-कुल में किया था ?

[७]

जयाब्धिजा को न वरा गया जो,
न युद्ध का सिन्धु तरा गया जो।
तो क्या मरा भी न गया समक्ष,
डूबा सभी हा! तुमसे स्वपक्ष ॥

[८]

राठौर! क्या लाज तुम्हें न आई,
जो कीर्ति दोनों कुल की मिटाई!
क्या देह से है यश हाय! छोटा,
या मृत्यु से है अमरत्व खोटा?

[९]

संग्राम में जो तुम काम आते,
तो लोक में निश्चल नाम पाते।
मैं भी सती होकर धन्य होती,
न क्षत्रिया होकर आज रोती ॥

[१०]

न भाग्य में था यह किन्तु मेरे,
दुर्दैव, हैं ये सब काम तेरे।
तू जो करे सो सब ठीक ही है,
मनुष्य विश्वास अलीक ही है ॥

[११]

माँ मेदिनी, तू फट, मैं समाऊँ;
कुकीर्ति से जो अब त्राण पाऊँ।
न लोक में मैं यदि जन्म पाती
तो भीरु-भार्या फिर क्यों कहाती॥

[१२]

नहीं नहीं, मैं यदि भीरु-भार्या,
तो कौन होगी फिर और आर्या?
हाँ, है तुम्हीं ने कुल-लाज खोई,
परन्तु मेरे तुम हो न कोई!!

[१३]

सीसोदियों के बन के जमाई,
है कीर्ति अच्छी तुमने कमाई!
आई तुम्हें लाज न नाम की भी,
रक्षा न होगी अब धाम की भी!

[१४]

सुना तुम्हें था वर-वीर मैंने,
सौंपा तभी था स्वशरीर मैंने!
यथार्थता किन्तु मुझे तुम्हारी,
हुई अभी है यह ज्ञात सारी॥

[१५]

विशाल वक्षस्थल, दीर्घ-भाल,
आजानु लम्बे युग बाहु-जाल ।
थे देखने ही भर के तुम्हारे,
ज्यों चित्र में अङ्कित अङ्ग सारे ॥

[१६]

था क्षत्रियों का वह उष्ण-रक्त,
हुआ यहाँ लों अब है अशक्त ।
बहा सके जो न विपक्षियों को,
दुराग्रही गो-धन-भक्षियों को ॥

[१७]

दैवात कभी शत्रु कुदृष्टि लावें,
सोत्साह मेरे हरणार्थ आवें ।
तो क्या मुझे भी तुम छोड़ भागो?
आश्चर्य क्या जो मुहँ मोड़ भागो!

[१८]

विश्वास क्या भीत पलातकों का?
स्वकर्म वा धर्म-विघातकों का?
कर्त्तव्य से जो च्युत हो चुके हों,
क्या है जिसे वे न डुबो चुके हों?

[१९]

जाओ, यहाँ से तुम लौट जाओ;
तुम्हें यहाँ स्थान कहाँ कि आओ।
हो शून्य तो भी यह सिंह-पौर,
है गीदड़ों को इसमें न ठौर॥

[२०]

चाहे अवज्ञा करके तुम्हारी,
मैंने किया हो अपराध भारी।
परन्तु मैं होकर क्षत्रियाणी,
कैसे कहूँ हा! न यथार्थ वाणी?

[२१]

मेरा-तुम्हारा न मिलाप होगा,
हा! शान्त कैसे यह ताप होगा।
विश्वेश लेवें सुध शीघ्र मेरी;
देवें मुझे मृत्यु करें न देरी॥

नोट—ऐतिहासिकों की राय में यह रानी हाड़ी थी। इसके अनुसार छठे पद्य में 'राना' के बदले 'हाड़ा' और तेरहवें पद्य में सीसोदियों के बदले 'हाड़ा जनों' पढ़ा जा सकता है।



महारानी अहल्याबाई का पत्र

(राघोबा के नाम)

[महारानी अहल्याबाई का दीवान गङ्गाधर स्वार्थवश उनके विरुद्ध राघोबा दादा पेशवा को चढ़ा लाया था। इसी सम्बन्ध-में महारानी अहल्याबाई ने यह पत्र लिखा था। युद्ध में विजय भी उन्हीं की हुई थी।]

[१]

जो आप आकर यहाँ करने लड़ाई,
देने चले समर में मुझको बड़ाई।
मैं धन्य भाग्य अपना यह जानती हूँ;
मैं भी अवश्य कुछ हूँ यह मानती हूँ॥

[२]

होता कहीं न मुझमें बल का विकास,
तो व्यर्थ आप फिर क्यों करते प्रयास?
विख्यात वीर करते जिससे विरोध,
होता किसे फिर भला वह तुच्छ बोध?

[३]

ऐसा महत्त्व अति दुर्लभ है सदैव;
मैं हूँ कृतज्ञ इसके हित सर्वथैव।
दूँ आपको यदि न मैं शत साधुवाद
होगा भला न फिर क्या मुझसे प्रमाद?

[४]

लेते विचार पहले परिणाम आर्य,
पीछे सहर्ष करते निज इष्ट कार्य।
कैसे कहूँ फिर कि आप बिना विचारे
हैं आ रहे समर के सज साज सारे?

[५]

होते न निर्भ्रम परन्तु सभी विचार;
जो भूल हो उचित है उसका सुधार।
है भ्रान्ति-मूल बहुधा मद और स्वार्थ;
कीजे क्षमा इस यथार्थ निवेदनार्थ॥

[६]

हाँ, तो बजे अब भयङ्कर युद्ध-भेरी;
हो स्वागतार्थ सब सज्जित सैन्य मेरी।
तैयार हूँ सब प्रकार सदा यहाँ मैं;
आदेश से अलग हो सकतो कहाँ मैं?

[७]

जो ज्ञात हो उचित आप करें भले ही;
हो हानि-लाभ कुछ भी न डरें भले ही ।
लीजे परन्तु फिर भी इतना विचार
हो निन्द्य कार्य जिसमें न किसी प्रकार ॥

[८]

जो लोभ देकर दिखाकर मोह-माया,
है आपको मम विरुद्ध उभाड़ लाया ।
क्या ज्ञात है यह कि है वह कौन व्यक्ति ?
लीजे विचार उसकी कुछ स्वामि-भक्ति ॥

[९]

मेरे अमात्य वर की यह है बड़ाई;
मेरे विरुद्ध जिसको यह बुद्धि आई ।
लाया चढ़ाकर यहाँ वह आपको है;
ऐसा मनुष्य डरता किस पाप को है ?

[१०]

यों मन्त्रि-धर्म जिसने अपना निबाहा,
खाया सदैव जिसका उसको न चाहा ।
ऐसे 'महापुरुष' के कथनानुसार
हैं आप क्या कर रहे, करिये विचार ॥

[११]

विद्रोह जो कर रहा मुझसे अभी है,
क्या आपसे कर नहीं सकता कभी है ?
जो तुच्छ बात पर छोड़ चुका स्वधर्म,
है क्या भला उस नराधम को अकर्म ?

[१२]

आश्चर्य है कि मति मण्डित आप जैसे
ऐसे कृतघ्न पर हैं अनुकूल कैसे !
होते प्रलोभ-वश अन्ध अभिज्ञ भी क्या ?
खोते विवेक सहसा वर विज्ञ भी क्या ?

[१३]

वीराग्रगण्य ! यह भी अब सोच लीजे
हूजे न रुष्ट कुछ और विचार कीजे।
संग्राम का प्रकट क्या परिणाम होगा ?
क्या आपका कलह से कुछ नाम होगा ?

[१४]

रक्त-प्रवाह सब से पहले बहेगा,
दायित्व आप पर ही उसका रहेगा।
आरम्भ हानि परिपूरित है सदैव,
है जानता इति-कथा बस एक दैव !

[१५]

शोभामयी वसुमती विकराल होगी ;
शान्तिस्थली रुधिर पूरित लाल होगी ।
होंगे विनष्ट बहु सैनिक लोग व्यर्थ
तो सोचिए, किस लिए इतना अनर्थ ?

[१६]

होंगे न आप इसके परिणाम-भोगी ?
है हेतु अल्प पर हानि विशेष होगी ।
श्रीमान ने उचित कार्य नहीं किया है
जो मान एक खल का कहना लिया है ॥

[१७]

हाँ, सावधान, वह साँप समीप ही है
दुर्योग से न दिन और न दीप ही है ।
पीछे पड़ा खल-पिशाच भुला रहा है
विश्वास-घातक अनर्थ बुला रहा है ॥

[१८]

संग्राम में विजय एक अवश्य पाता
जाना परन्तु पहले कुछ भी न जाता ।
मैं ही पराजित हुई यदि, मान लीजे,
होगी न कीर्ति फिर भी, यह जान लीजे ॥

[१९]

श्रीमान को सब महाबल मानते हैं,
है नारि-जाति अबला, सब जानते हैं।
दैवात् परन्तु मुझसे यदि आप हारे
तो लुप्त ही समझिए निज गीत सारे॥

[२०]

जो हो, सचेत कर दे निज शत्रु को भी;
देता हुआ उचित सम्मति हो न लोभी।
मानें न वैर शुभ-भाषण में किसी से,
मैंने किया यह निवेदन है इसीसे॥

[२१]

कर्त्तव्य पत्र लिख के यह पालती हूँ,
चातुर्य से न अपना भय टालती हूँ।
होना विचूर्ण उस मस्तक का भला है
जो शत्रु से सभय हो झुकने चला है॥

[२२]

जो योग्य था कह दिया, अब आप जानें,
है प्रार्थना बस यही कि बुरा न मानें।
जो है भविष्य वह होकर ही रहेगा,
जैसा बहे पवन निश्चय ही बहेगा॥

रूपवती का पत्र

(महाराना राजसिंह के नाम)

[रूपनगर की राजकुमारी रूपवती ने महाराना राजसिंह की कीर्ति सुनकर मन ही मन, उन्हें वरण किया था। किन्तु सङ्कोच-वश वह अपनी अभिलाषा प्रकट न कर सकी। इसी समय औरङ्गजेब ने उसके रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर उसे अपनी बेगम बनाना चाहा तब विवश होकर उसने महाराना को यह पत्र लिखा। कहना बाहुल्य है कि महाराना ने औरंगजेब की सेना को पराजित करके उसका पाणिग्रहण किया और इस कार्य से अपने को कृतकृत्य समझा।]

[१]

सिद्धश्री कुल-कीर्त्ति-कारक कृती चितौर-चूड़ामणि,
राजन्य-व्रत-धन्य धारक सुधी श्रीराजसिंहाग्रणी।
कैसे पत्र लिखूँ तुम्हें कुलवती मैं क्षत्रिया बालिका,
होती है रुधिर-प्रदान करके जो शील-सञ्चालिका॥

[२]

साक्षी हैं सुर, किन्तु, जो पर नहीं मैं जानती हूँ तुम्हें
हा लज्जा! कब से अभिन्न अपना मैं मानती हूँ तुम्हें।
तो, लो, भेंट-स्वरूप गुप्त अपने हृद्भाव लाके स्वयं,
होती रूपवती पदप्रणत है, प्रत्यक्ष आके स्वयं॥

[३]

आई हूँ किस हेतु मैं, अब सुनो, भिक्षा मुझे चाहिए;
भिक्षा? हा हतशील! और अब क्या शिक्षा तुझे चाहिए।
मेरा स्वत्व रहा न मृत्यु पर भी रक्षार्थ जो मैं मरूँ,
लज्जा भी रहती नहीं यदि यहाँ मैं आज लज्जा करूँ॥

[४]

भिक्षा जीवन की? न, जीवन तुम्हें मैं दे चुकी आप ही
होता जो अपने अधीन वह तो पाती न सन्ताप ही।
देती आज सहर्ष और रखती लज्जा अनायास ही,
भिक्षा की यह भावना फटकने पाती नहीं पास ही॥

[५]

जो हो, सम्प्रति मैं यहाँ पर बड़ी आपत्ति में हूँ पड़ी,
लज्जा छोड़ समक्ष आज इससे मैं हो गई हूँ खड़ी।
मेरा विश्रुत नाम ही बन गया मेरे लिए वाम है,
नीचे हो तुम और ऊपर वही धर्म्माग्रही राम है॥

[६]

भ्राता-रक्त-सिताम्बु, खड्ग-रसना, साम्राज्य-तृष्णा हरे!
ऐसे भीषण-भूरि-भाव जिसमें हैं पूर्व ही से भरे।
जो है आलमगीर किन्तु जिसकी औरङ्गज़ेबी मची;
दूरस्था, शनि-दृष्टि से न उसकी, हूँ आज मैं भी बची!

[७]

डोले का फ़रमान पाकर पिता उन्मत्त-से हो रहे,
ज्वाला से अपमान की जल रहे, वे धैर्य्य हैं खो रहे।
शाही फौज कि जो सगर्व मुझको लेने यहाँ आ रही,
देंगे वे असि-नीर-अर्घ्य उसको, हैं ठान बैठे यही॥

[८]

क्या होगा इससे परन्तु, यह भी वे जानते हैं स्वयं,
तो क्यों केवल नाश का हठ वृथा वे ठानते हैं स्वयं?
जाते स्कन्ध न क्यों मिलाकर वहाँ आँवेर के स्कन्ध से?
शाही मंसबदार क्यों न बनते वे शाह-सम्बन्ध से?

[९]

ऐसा उत्तर अन्ततः सहज ही देंगे न सीसोदिया,
देंगे तो फट जायगा प्रथम ही आरावली का हिया।
शूरों के असि-सार से रचित भी चित्तौर ढा जायगा,
सारी क्षत्रिय-सृष्टि का, अधिक क्या, कल्पान्त आ जायगा!

[१०]

छोटे पार्थिव हैं पिता, इस लिए क्या धर्म को छोड़ दें?
मर्यादा निज कीर्तिमान कुल की वे आप ही तोड़ दें?
छोटा वैभव-वित्त हो, पर कहीं छोटा नहीं धर्म तो,
होता है अपने अधीन सबका कर्त्तव्य या कर्म तो॥

[११]

सो जावें सब एक बार सहसा औ वेर सो जाय जो ?
नक्षत्रोदय भी न हो गगन में सूर्यास्त हो जाय जो ?
पीछे जो कुछ हो, परन्तु उनकी है धारणा-धी यही—
जीते जी अवमानना न हमसे यों जा सकेगी सही ॥

[१२]

मेरा क्या मत है, नरेन्द्र, अब भी जो जानना है इसे,
मात:पद्मिनि ! उत्तरार्थ इसके तो मैं पुकारूँ किसे ?
मेरा क्या मत है, तुम्हीं त्रिदिव से आके बता दो इन्हें;
जो शिक्षा तुम दे गईं जगत से जाके, जता दो इन्हें ॥

[१३]

मेरा क्या मत है ? मनीषि ! मुझसे क्या पूछते हो भला ?
पूछो आत्म-सुकीर्ति से कि जिसको है व्योम में भी कला ।
क्षत्राणी भय से कि लोभ-वश हो जो धर्म को छोड़तीं
तो सम्बन्ध अवश्य ही जनकजा लङ्केश से जोड़तीं ॥

[१४]

जो मेरा भुज-पाश शक्ति रखता कीनाश के पाश की
तो देती गलबाँह मैं यवन को, होती क्रिया नाश की ।
पा लेता फल लुब्ध पामर अभी स्पर्द्धा-अहङ्कार का;
कोई साहस भी कभी न करता ऐसे अनाचार का ॥

[१५]

मैं हूँ किन्तु मनस्वि हाय ! अबला-बाला अशक्ता-वशा,
आई हूँ अतएव मैं शरण में, है शोचनीया दशा।
जानों जो अब योग्य सो तुम करो, मैं भी कहो, क्या करूँ?
जीना या मरना अधीन समझो, जीती रहूँ या मरूँ ?

[१६]

मुक्ता-से गुण कर्ण-शुक्ति-पुट में जो थे तुम्हारे उगे,
मेरे मानस-हंस ने प्रथम ही वे प्रेम से हैं चुगे।
यों तो लोभ असीम है, पर यही था भाग्य मेरा बड़ा,
आई आज विपत्ति है, इस लिए प्रत्यक्ष होना पड़ा॥

[१७]

सच्ची वीर कहानियाँ सुन मुझे होता सदा हर्ष है;
हो जो संकट में परिस्फुट वही भाता जनोत्कर्ष है।
श्रद्धा से वर-वंश-वृत्त सब हैं मैंने तुम्हारे सुनें,
कोई भी अपने हितार्थ उनसे चारित्र्य-चर्चा चुनें॥

[१८]

गाथाएँ सुन, सीख, गा कर अहा ! मैं मग्न होती कभी,
साके, जौहर सोच गद्गद हुई आँखें भिगोती कभी।
आता था मन में, क्षमा तुम करो ऐसी बड़ी धृष्टता—
लावे खींच कहीं वही दिन यहाँ मेरी शुभाकृष्टता !

[१९]

जैसे पूर्वज थे, तुम्हें जब सुना मैंने व्रती साहसी,
आई बाहर एक साथ उर से आवेग की आह-सी।
ऊँचा था अभिलाष हाय! मन का, मैं तुच्छ थी, और हूँ
कुल्या होकर सिन्धु-ओर लपकूँ, भूली कहाँ ठौर हूँ॥

[२०]

आशा खोकर अन्त में बस यही सोची बड़ी साधना,
काटूँ आयु किसी प्रकार करके मैं ईश्वराराधना।
होती थी वह भी न किन्तु मुझसे निष्काम के भाव से;
इच्छा थी, पर-जन्म में प्रिय, तुम्हें पाऊँ इस चाव से॥

[२१]

लाती थी प्रभु-मूर्त्ति को जब अहो! प्रत्यक्ष मैं ध्यान में
पाती थी तब सामने बस तुम्हें अज्ञान या ज्ञान में।
तो भी मैं तुमको किसी विधि वहीं पीछे छिपाती रही।
चेष्टा किन्तु न आज मैं कर सकी, जो भाग्य है हो वही॥

[२२]

मेरे सम्मुख आज भी बस तुम्हीं प्रत्यक्ष-से हो खड़े,
छाती काँप रही परन्तु भय से, है विघ्न पीछे पड़े।
पापात्मा शिशुपाल-सा यवन है, मैं रुक्मिणी-सी फँसी,
मेरे कृष्ण! तुम्हीं, सवेग सुध लो, होने न पावे हँसी॥

साहित्य-सदन के नये ग्रन्थ

गुरुकुल— सिख गुरुओं पर गुप्तजी की नई रचना। सिखों की वीरता, उनका त्याग, और उनके देश-प्रेम का हृदय ग्राही वर्णन पढ़ने ही योग्य है। मूल्य सजिल्द २)

हिन्दू—गुप्तजी की नवीन रचना। हिन्दुओं के उत्थान के लिए जितनी भी पुस्तकें निकली हैं उनमें यह अपना सबसे ऊँचा स्थान रखती है। मूल्य १) व १।)

विकट भट—श्रीमैथिलीशरण गुप्त लिखित काव्य। मूल्य ≡)

त्रिपथगा—महाभारत सम्बन्धी गुप्तजी के तीन सुन्दर काव्य—वकसंहार, वनवैभव, और सैरन्ध्री। सुन्दर जिल्द का मूल्य १॥) तीनों अलग अलग।≡)

शक्ति—गुप्तजी का नवीन काव्य। मूल्य।)

मेघनाद-वध—बंगीय कविश्रेष्ठ श्रीमाइकेल मधुसूदनदत्त के प्रसिद्ध 'मेघनाद-वध' का हिन्दी पद्यानुवाद है। बिल्कुल मूल का आनन्द आता है। मूल्य २॥)

वीराङ्गना—यह भी श्री मधुसूदनदत्त के प्रसिद्ध 'वीराङ्गना' काव्य का पद्यानुवाद है। मूल्य १)

विरहिणी व्रजाङ्गना—यह भी माइकेल के व्रजाङ्गना नामक काव्य का सरल पद्यानुवाद है मूल्य।)

गीता-रहस्य—एक बंगाली विद्वान कीप्रसिद्ध पुस्तक का अनुवाद। गीता की अपूर्व व्याख्या। मू० २॥)

चित्रांगदा—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बंगला काव्य का सफल पद्यानुवाद। मूल्य।≡)

अन्य काव्य-ग्रन्थ

भारत-भारती—सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय काव्य। मू० सादी १) सजिल्द १॥)

जयद्रथ-वध—वीर और करुण रस का अद्वितीय खण्डकाव्य ॥), १)

रङ्ग में भङ्ग—मनोहर ऐतिहासिक खण्डकाव्य ।)

चन्द्रहास—भावपूर्ण नवीन पौराणिक नाटक ।।।)

तिलोत्तमा—गद्य-पद्य-मय सरस पौराणिक नाटक ॥)

शकुन्तला—शकुन्तला नाटक के आधार पर निराली रचना ।=)

किसान—एक किसान की करुण कथा का हृदयद्रावक वर्णन ।=)

पत्रावली—ओजस्वी ऐतिहासिक कविता-पुस्तक ।-)

वैतालिक—भारत की जागृति पर कोमल-कान्त-पदावली ।)

पञ्चवटी—कवित्व पूर्ण नवीन काव्य। मूल्य ।=)

पलासी का युद्ध—बँगला के राष्ट्रीय काव्यका हिन्दी पद्यानुवाद १॥)

मौर्य्य-विजय—वीर रस-प्रधान ऐतिहासिक खण्डकाव्य ।)

अनाथ—आधुनिक कथा-मूलक खण्डकाव्य ।)

आर्द्रा—श्री सियारामशरण रचित कविता बद्ध कहानियाँ। प्रत्येक कहानी पढ़कर करुणा से हृदय द्रवित होजाता है। मूल्य १)

सुमन—पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी की फुटकर कविताओं का संग्रह। खद्दर की सुन्दर जिल्द मू० १)

स्थायीग्राहकों को विशेष सुविधा।

स्थायीग्राहक बनिए, और अपने मित्रों को भी बनाइए।

पता—प्रबन्धक,

साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)